P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6 * ISSUE-5 * (Part-1) January- 2019
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

भारतीय बौद्धिक लेखन परम्परा के विविध आयाम एवं स्वरचनाधर्मिता

अनिल प्रताप गिरि
प्राध्यापक,
संस्कृत विभाग,
पाण्डिच्चेरी विश्वविद्यालय,
पुदुच्चेरी

सारांश

संस्कृत का विद्यार्थी होने के नाते मैं संस्कृत साहित्य की दृष्टि से इस विषय पर विचार प्रस्तुत करता हूँ। वस्तुतः संस्कृत साहित्य लेखन परम्परा में काव्य का अपना विशेष महत्व है। काव्य लेखन के छः प्रयोजन काव्याचार्यों ने बताए है। जैसे काव्य का लेखन यश, अर्थ, व्यवहारज्ञान, अकल्याण का नाश, आनन्द एवं कान्तासम्मित उपदेश हेतु किया जाता है । कुछ आचार्यों ने तो पुरुषार्थ चतुष्टय की सुखपूर्वक प्राप्ति ही काव्य लेखन का प्रयोजन बताया है , और कुछ ने तो पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति के साथ–साथ कलाओं में निपुणता एवं कीर्ति तथा आनन्द की प्राप्ति स्वीकार किया है। दशरूपककार धनञ्जय ने तो दृश्यकाव्य जो काव्य का द्वितीय भेद है, का प्रयोजन आनन्द की प्राप्ति माना है । धनञ्जय यह स्वीकार करते हैं कि "यद्यपि दृश्यकाव्य की कथावस्तु का प्रयोजन त्रिवर्ग की प्राप्ति है, फिर भी नाट्य का प्रयोजन आनन्द ही है"। यहाँ आनन्द से तात्पर्य दुःख की निर्वृत्ति से है जो काव्य लेखन के साथ ही साथ शास्त्रलेखन का भी कारण है । प्रायः सभी भारतीयदर्शन लेखनपरम्परा का आरम्भ दुःख की निर्वृत्ति एवं आनन्द की प्राप्ति हेतु किया जाता है। यह आनन्द विभिन्न दार्शनिक सम्प्रदायों में भिन्न–भिन्न नाम से पारिभाषित किया गया है जिसे कैवल्य, निर्वाण, निःश्रेयस,मोक्ष एवं विवेकज्ञान। वस्तुतः साहित्य का आनन्द एवं दर्शन का आनन्द दोनों में गुणात्मक भेद न होते हुए भी दोनों की सत्ता में भेद है। एक तरफ काव्य का आनन्द केवल विभावादि की स्थिति तक ही रहता है वहीं दूसरी तरफ दर्शन का आनन्द सञ्चित एवं क्रियमाण कर्मों का नाश करके प्रारब्ध कर्म का फल भोगने पर्यन्त स्थायी रूप में रहता है । इसप्रकार हम कह सकते हैं कि जहाँ साहित्य का आनन्द क्षणिक है वहीं दर्शन का आनन्द स्थायी है, परन्तु साहित्य का आनन्द मन्दबुद्धि वालों को भी अल्पप्रयास से प्राप्त हो जाता है जबकि दर्शन के आनन्द की प्राप्ति का मार्ग साहित्य की अपेक्षा कठिन है। इसप्रकार इतना तो स्पष्ट होता है कि संस्कृतसाहित्य में काव्य या शास्त्र लेखन का परम उद्देश्य आनन्द की प्राप्ति अथवा दुःख की निर्वृत्ति है। इस आनन्द की प्राप्ति में पुरुषार्थचतुष्टय जिसमें धर्म–अर्थ–काम एवं मोक्ष परिगणित होता है एक साधन के रूप में परिलक्षित होता है। अतएव लेखन का मूल उद्देश्य भी दुःख की निर्वृत्ति एवं आनन्द की प्राप्ति स्वीकार किया जा सकता है। यह दुःख भी सांख्यतत्त्वकौमुदी के अनुसार तीन है दृ आध्यात्मिक, आधिभौतिक, एवं आधिदैविक, जिसमें आध्यात्मिक दुःख भी शारीरिक एवं मानसिक होने के कारण दो प्रकार का है । शारीरिक दुःख वात–पित्त एवं कफ की वैषम्यता से उत्पन्न होता है, जबकि मानसिक दुःख, काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, ईर्ष्या एवं विषाद से उत्पन्न होता है । आधिभौतिक दुःख मनुष्य, पशु, पक्षी, सरीसृप (सर्पादि) तथा स्थावर (स्थितिशील वृक्षादि) से उत्पन्न होता है। आधिदैविक दुःख यक्ष, राक्षस, विनायक (विघ्नकारी देव जातिविशेष), ग्रह आदि के आवेश (कुप्रभाव) से उत्पन्न होता है। इन दुःखों के नाश से आनन्द की प्राप्ति होती है जो भारतीय बौद्धिक लेखन परम्परा का मूल उद्देश्य है।

मुख्य शब्दः काव्य,शास्त्र, समकालीक, मुद्दा, Rationalist, Instrumental Rationalist, Composer, Author, Compiler.

प्रस्तावना

लेखन परम्परा संस्कृतसाहित्य की वह विधा है जो समाज का सृजन एवं समाज का प्रतिनिधित्व करती है। मुख्यतः तीन प्रकार के लेखक होते हैं– एक कारयित्री प्रतिभा के धनी लेखक जिन्हें Rationalist Writer कहते हैं जो शास्त्रों का निर्माण समाज का सृजन करने हेतु सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक,

धार्मिक, सांस्कृतिक, पर्यावरणीय एवं आध्यात्मिक समस्यायें का उजागर एवं उसके समाधान करने हेतु करते हैं।

दूसरे प्रकार के लेखक जो भावयित्री प्रतिभा के धनी होते हैं जिन्हें Instrumental Rationalist कहा जाता है जो काव्यों का निर्माण समाज का प्रतिनिधित्व करने हेतु एवं व्यक्तिगत सार्वभौमिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, पर्यावरणीय एवं आध्यात्मिक समस्याओं के निदान हेतु करते हैं।

तीसरे प्रकार के लेखक जो कारयित्री एवं भावयित्री दोनों प्रतिभाओं के धनी होते हैं वे अपने लेखन के द्वारा समाज का यथार्थ वर्णन करते हुए सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, पर्यावरणीय एवं आध्यात्मिक समस्यायों का उजागर एवं निदान उसके वास्तविक मूल रूप में ढूढते हुए करते हैं ऐसे लेखक सम्यक् दृष्टि वाले होते हैं जो अपने लेखन में विवेक शक्ति का प्रयोग करते है एवं जिसे Instrumental cum Rationalist Writer कहा जाता है।

संस्कृत लेखन की संरचनाधर्मिता का मूलस्वरूप

संस्कृत साहित्य का विद्यार्थी होने के नाते मेरा व्यक्तित्व भी संस्कृत साहित्य के संस्कार से निर्मित है जो मेरी लेखनविधा को पूर्णरूप से प्रभावित किए हुए है। जब मैं काव्य लिखता हूँ या काव्य करता हूँ तब मेरा व्यक्तित्व एक साधन की भूमिका में रहता है। मैं अपनें को उस काव्य का वास्तविक कर्ता न मानक एक साधन के रूप काव्य की सर्जना करता हूँ –जिसमें मैं, मेरी लेखनी और मेरा पन्ना एक हो जाता है। मैं इतना साधारणीकृत हो जाता हूँ कि मुझे स्वयं की अनुभूति नहीं होती है कि मैं क्या लिख रहा हूँ ? ऐसा प्रतीत होता है कि कोई दैवीय शक्ति मुझे लिखने के लिए मजबूर करती है मेरी स्थिति एक सच्चे योगी की हो जाती है जैसे–जैसे मैं लिखता जाता हूँ मेरी आन्तरिक पीडा या द्वन्द्व का निरसन होता जाता है, और मैं अपने आपको हल्का, तरोताजा एवं आनन्दयुक्त महसूस करने लगता हूँ। मेरे लेखन की यह विधा Instrumental Rationalist कही जा सकती है, जहाँ बुद्धि की जगह हृदय का प्रयोग किया जाता है और जिसका उद्देश्य आन्तरिक एवं वाह्यगत दुःख की निर्वृत्ति एवं आनन्द की प्राप्ति है। संस्कृत में लेखन की इस विधा का कारण भावयित्री प्रतिभा है जिसमें जो लेखन होता है वह इस समाज का प्रतिनिधित्व करने में अपनी भूमिका निभाता है।

अध्ययन का उद्देश्य एवं संस्कृत साहित्य की लेखन विधि

इस प्रपत्र का उद्देश्य भारतीय बौद्धिक लेखन परम्परा की विविधता को प्रकाशित करना है जिसमें वस्तुतः विषयानुसार लेखन प्रवृत्ति में परिवर्तन दिखाई देता है। प्रस्तुत प्रपत्र में इस विन्दु को विशेष रूप से लोगो के समक्ष प्रकाशित करना है। यद्यपि लेखन के विविधता में लेखक की प्रतिभा का विशेष महत्व होता है प्रतिभा के वैविध्य से लेखन में विविधता आना स्वाभाविक है, फिर भी यह वैविध्य गौण है जिसपर विषय का प्रभाव पडने से प्रतिभा शक्ति में परिवर्तन दिखाई देता है। अतएव विषयवस्तु के अनुरूप प्रतिभा शक्ति में परिवर्तन को प्रकाशित करना भी इस प्रपत्र का एक और लक्ष्य भी है। लेखन के विषय भी यद्यपि अनन्त है फिर भी स्थूलरूपसे उन्हें तीन विषयों में बाँटकर लेखन के विविधता को वैज्ञानिक एवं तार्किकरूप मे प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

संस्कृतसाहित्य के प्रायः अधिकांश लेखन कार्य इस विधा को अङ्गीकृत करके किया गया है, यही कारण है कि इस विधा के लेखक अपने को साधन के रूप में मानने से अपना परिचय अपने काव्य में नही देते हैं। वे मानते हैं कि इस प्रकार का लेखन ईश्वर की कृपा से, गुरूजनों के आशीर्वाद से एवं उचित पर्यावरण के महत् संयोग से हो रहा है जिसका उद्देश्य समाज को एक सही दिशा दिखाने के साथ साथ लेखक की आन्तरिक द्वन्द्वता को दूर करना है। संस्कृत के बडे कवि कालिदास, भवभूति, माघ, दण्डी, वाल्मीकि, व्यास इत्यादि इसी विधा के लेखक माने जा सकते हैं– जिनका सम्पूर्ण वाङ्मय तो मिलता है परन्तु लेखक के बारे में कुछ भी प्राप्त नहीं होता है। ऐसे कवि अपना परिचय देकर अपने अहं भाव को अपने लेखन में नहीं लाना चाहते थे। ऐसे कवि Liberated Souls हैं– जो अपने को अपने द्वारा किए गए कार्य का वास्तविक कर्ता नहीं मानते हैं। ऐसे कवियों के लेखन का उद्देश्य भी पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति करना है–जैसा कि साहित्यदर्पणकार ने काव्य का प्रयोजन पुरुषार्थ सिद्धि ही माना है।

"चतुर्वर्गफलप्राप्तिः सुखादल्पधियामपि।
काव्यादेव यतस्तेन तत्स्वरूपं निरूप्यते।।"

काव्य के अतिरिक्त जब मैं शास्त्र लेखन पर विचार करता हूँ– जैसे व्याकरण, सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा इत्यादि तर्क प्रधान विषयों पर, उस समय लेखक का व्यक्तित्व साधन की जगह साधक की भूमिका में हो जाता है। वह हृदय की अपेक्षा वुद्धि का प्रयोग ज्यादा करने लगता हूँ। उसकी लेखन प्रतिभा भावयित्री की जगह अब कारयित्री से युक्त हो जाती है। इस स्थिति में मै, मेरी लेखनी एवं लेखन–पन्ने के बीच भेद स्पष्ट दिखायी देता है वह तर्कवादी हो जाता है और लेखन के प्रति यह अहं भाव भी स्वतः आ जाता है कि मैं ही इस लेख का वास्तविक कर्ता हूँ। और यह अनुभूत करता है कि मैं और मेरा ज्ञान, मेरी इच्छा और मेरी कृति एवं मेरे प्रयत्न के संयोग से यह कार्य हुआ है। जिसका उद्देश्य पुरुषार्थ चतुष्टय के साथ–साथ कीर्ति एवं प्रीति प्राप्त करना होता है। संस्कृत साहित्य में इस प्रकार की लेखन परम्परा को Rationalist Writing Tradition कहा जाता है। जो अपने ग्रन्थों में मङ्गलाचरण करने के साथ–साथ अपना परिचय भी देते है। ऐसे लेखक पण्डितराजजगन्नाथ, एवं शास्त्रों के व्याख्याकार हैं – जिनका प्रयोजन पुरुषार्थ चतुष्टय के साथ ही साथ व्यक्तिगत कीर्ति, आनन्द एवं ज्ञान में दक्षता प्राप्त करना हो सकता है।काव्यालङ्कार कार भामह ने लेखन की इसी विधा के प्रयोजन को सिद्ध करते हैं। भामह का कथन है कि–

"धर्म–अर्थ–काम–मोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासु च।

करोति कीर्तिं प्रीतिं च साधुकाव्य निबन्धनम्।।

लेखन की यह विधा मुझे किसी भी ज्ञान या विचार को वैज्ञानिकरूप में प्रस्तुत कराने में प्रेरक होती है –जिससे ज्ञान का रहस्य स्वयं को भी जानने में तथा दूसरों को भी जानने में मददगार होता है। निश्चित ही किसी को ज्ञान के रहस्य की वैज्ञानिक प्रस्तती हेतु तर्क की मदद लेनी पडती है तर्क के विना कोई भी ज्ञान! विज्ञान के रूप में परिणत नहीं हो सकता है। और जब तक ज्ञान ! विज्ञान के रूप में उपस्थापित नहीं किया जायेगा तबतक उस ज्ञान का लाभ न तो स्वयं को और न ही दूसरों को प्राप्त हो पायेगा। ज्ञान को संशय की परिधि से बाहर लाने के लिए उसे विज्ञान बनाना अपरिहार्य हो जाता है इसीलिए तर्क को आन्वीक्षिकी विद्या के रूप में आचार्य कौटिल्य एवं वात्स्यायन ने अपने–अपने ग्रन्थों में जो सभी विद्याओं का दीपक एवं सभी कर्मो का उपाय एवं सभी धर्मो का आश्रय के रूप में ज्ञेय है। आचार्य कौटिल्य अपने ग्रन्थ अर्थशास्त्र में कहते हैं कि–

"प्रदीपः सर्वविद्यानाम् उपायः सर्वकर्मणाम्।
आश्रयः सर्वधर्माणां शाशवद् आन्वीक्षिकी मता।।"

इस प्रकार काव्य के लेखन में जहाँ मैं साधन की भूमिका में रहता हूँ जिसे अग्रेंजी में Composer कहते हैं, इस विधा में काव्यलेखन का उद्देश्य समाज को प्रतिनिधित्व करने की दिशा प्रदान करने के साथ–साथ व्यक्तिगत द्वन्द्व से मुक्ति एवं समाज में व्याप्त विसंगतियो के निदान हेतु एक आदर्श माडलकी संरचना प्रस्तुत करना है। वहीं जब मैं काव्य के लेखन में साधक की भूमिका में होता हूँ तब मैं Composer से Author बन जाता हूँ। मैं अपने लेखन कार्य को स्वयं का कार्य उद्घोषित करता हूँ। इस विधा में लेखन का उद्देश्य समाज की पुनर्संरचना करने की दिशा प्रदान करने के साथ–साथ व्यक्तिगत द्वन्द्व से मुक्ति का हल विसंगतियों के निदान हेतु एक वैज्ञानिक माडल की संरचना प्रस्तुत करना है।

काव्य एवं शास्त्र के अतिरिक्त जब मैं समाज की समकालीन समस्यायों पर लिखता हूँ या अपनी तत्कालीन व्यक्तिगत समस्यायों का निदान ढूढने हेतु लिखता हूँ–तब मेरी स्थिति न तो साधन की होती है और न ही साधक की होती है। तब मैं न तो Instrumental Rationalist की भूमिका में रहता हूँ और न ही Rationalist की भूमिका में रहता हूँ। न मैं Composer होता हूँ और न ही नवजीवंत। न ही मेरे अन्दर भावयित्री प्रतिभा प्रबल होती है और न ही कारयित्री प्रतिभा बल्कि उक्त दोनों प्रतिभाओं का मिश्रण या उक्त दोनो प्रतिभाओं से परे की मेरी स्थिति होती है जिसे मैं लिखकर ही अनुभूत कर पाता हूँ। इसे ठीक–ठीक शब्दों में कहना कठिन हो जाता है सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन अज्ञेय अपने लेख में " मैं क्यों लिखता हूँ" – इस स्थिति को बताते हैं कि यह एक मनोवैज्ञानिक प्रश्न है जिसे लिखने के बाद ही जाना जा सकता है कि मैं क्यों लिखता हूँ। इसप्रकार की दशा में मैं जो भी लेख लिखता हूँ उसमें हमारी विवेकशक्ति प्रबल रहती है जो यथार्थवाद एवं आदर्शवाद के मध्य सन्तुलन स्थापित करते हुए समकालिक विसंगतियों का निदान ढूढती है। ये समकालिक विसंगतियाँ सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक हो सकती हैं। इन विसंगतियों का निदान तटस्थ होकर मैं अपनी लेखनी के द्वारा ढूढने का प्रयास करता हूँ। इस प्रकार के लेख में जैसे–जैसे हमें समस्याओं का निदान मिलता जाता है वैसे–वैसे ही मेरी अन्तर्मन की पीडा दूर होती जाती है। इसप्रकार के लेख प्रायः विमर्शात्मक होते है जिसमें मैं निष्कर्ष नहीं निकाल पाता हूँ। निष्कर्ष को पाठकों के उपर छोड देता हूँ जो इस प्रकार के लेख को पढकर अपने–अपने संस्कारों एवं आवश्यकताओं के अनुसार समय–समय पर निष्कर्ष निकालते रहें। यद्यपि लेखन की यह विधा मेरी अपनी नहीं है। इस प्रकार के लेख विमर्श के रूप में संस्कृतसाहित्य में प्राप्त होते हैं जो एक निश्चित विषय पर पर्याप्त चर्चा करते हैं। महर्षि वादरायण का ब्रह्मसूत्र जो "अथातो ब्रह्मजिज्ञासा" से प्रारम्भ होता है। महर्षि जैमिनि का मीमांसासूत्र "अथातो धर्मजिज्ञासा" से प्रारम्भ होता है जो इसप्रकार के लेखन विधा की पुष्टि करते हैं। यहाँ जिज्ञासा से तात्पर्य विचार करना ही है, जो किसी एक विषय पर गम्भीर विचार प्रस्तुत करता है। इसमें लेखक न तो Author की भूमिका में होता है और न ही Composer की भूमिका में होता है बल्कि वह Compiler की भूमिका में होता है जिसमें समकालीन समस्यायों के निदान हेतु वह अपनी विवेकशक्ति का प्रयोग करते हुए तथ्यों कों एक जगह रखकर उसका विश्लेषण करता है।

निष्कर्ष

इसप्रकार मैं निष्कर्ष रूप में यह कहना चाहूँगा कि मेरे लिखने का कारण मेरे अन्तर्मन की पीडा है जो वाह्यसमाज की पीडा से प्रबल होकर मुझे लिखने के लिए प्रेरित करती है। जैसे–जैसे मैं लिखता जाता हूँ मेरी पीडा क्षीण होती जाती है और मैं आनन्द एवं ऊर्जा से भर जाता हूँ। यद्यपि मेरे लिखने के और भी कारण हो सकते हैं लेकिन आनन्द की प्राप्ति उनसभी कारणों में सबसे प्रबल कारण होता है, चाहे मैं Author की भूमिका में रहूँ या Composer की भूमिका में, या Compiler की भूमिका में। यह आनन्द अन्तर्मन की पीडा को नष्ट कर देता है जो व्यक्तिगत एवं वाह्यगतकारणों से उत्पन्न होती है। जिसे काव्यप्रकाशकार आचार्यमम्मट ने काव्य के प्रयोजन में सबसे मुख्य प्रयोजन "सकलप्रयोजनमौलिभूतं समनन्तरमेव रसास्वादनसमुद्भूतं विगलितवेद्यान्तरमानन्दम् के रूप में बताया है– अन्त में गोरखपाण्डेय की कविता के साथ मैं अपनी बात को समाप्त करता हूँ, जो समकालिक मुद्दों को एक Compiler के रूप में प्रस्तुत करती है–

"हजारसाल पुराना है उनका गुस्सा।
हजारसाल पुरानी है उनकी नफरत।
मैं तो सिर्फ,
उनके विखरे हुए शब्दों को
लय और तुक के साथ लौटा रहा हूँ।
मगर तुम्हें डर है कि आग भडका रहा हूँ।।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. *"काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये। सद्यः परनिर्वृत्तये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे।।" – काव्यप्रकाश,१.१।*
2. *."चतुर्वर्गफलप्राप्तिःसुखादल्पधियामपि।काव्यादेव यतस्तेन तत्स्वरूपं निरूप्यते ।।"– साहित्यदर्पण,१.२।*
3. *."धर्मार्थकाममोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासु च। करोति कीर्तिं प्रीतिं च साधुकाव्य निबन्धनम्।"दृ काव्यालङ्कार,१.२।*
4. *"आनन्दनिस्यन्दिषु रूपकेषु व्युत्पत्तिमात्रं फलमल्पबुद्धिः। योऽपीतिहासादिवदाह साधुस्तस्मै नमः स्वादुपराङ्मुखाय ।।"– दशरूपक,१.६।*
5. *"कार्यं त्रिवर्गस्तच्छुद्धमेकानेकानुबन्धि च ।।"– दशरूपक, १.१६।*
6. *"सकलप्रयोजनमौलिभूतं समनन्तरमेव रसास्वादनसमुद्भूतं विगलितवेद्यान्तरमानन्दम्।" – काव्यप्रकाश,१.१।*
7. *"साधारण्येन प्रतीतैरभिव्यक्तः सामाजिकानां वासनात्मतया स्थितः स्थायी रत्यादिको नियतप्रमातृगतत्वेन स्थितोऽपि साधारणोपायबलात् तत्कालविगलितपरिमितप्रमातृ भाववशोन्मिषित वेद्यान्तर सम्पर्क शून्यापरिमितभावेन प्रमात्रा सकलसहृदय संवादभाजा साधारण्येन स्वाकार इवाभिन्नोपि गोचरीकृतश्चर्व्यमाणतैकप्राणो विभावादिजीवितावधिः पानकरसन्यायेन चर्व्यमाणः पुर इव परिस्फुरन् हृदयिमिव प्रविशन् सर्वाङ्गीणमिवालिङ्गन् अन्यत् सर्वमिव तिरोदधत् ब्रह्मास्वादमिवानुभावयन् अलौकिक चमत्कारी श्रृङ्गारादिको रसः ।" – काव्यप्रकाश, ४. ५७–६०।*
8. *"दुःखानां त्रयं दुःख त्रयं, तत् खलु आध्यात्मिकाधिभौतिकमाधिदैविकं च ।" – सांख्यतत्त्वकौमुदी,१२।*
9. *"तत्राध्यात्मिकं द्विविधं–शारीरं मानसं च"– सांख्यतत्त्वकौमुदी,१२।*
10. *"शरीरं वातपित्तश्लेष्मणां वैषम्यनिमित्तम्।" – सांख्यतत्त्वकौमुदी,१२।*
11. *"मानसं कामक्रोधलोभमोहभयेर्ष्याविषादविषयविशेषादर्शननिबन्धनं।" – सांख्यतत्वकौमुदी,१२।*
12. *"तत्राधिभौतिकं–मानुषपशुपक्षीसरीसृपस्थावरनिमित्तम्।"– सांख्यतत्त्वकौमुदी,१३।*
13. *"आधिदैविकं यक्षराक्षस विनायकग्रहावेशनिबन्धनम्।" – सांख्यतत्त्वकौमुदी,१४।*